

Chapter आठ

राजा परीक्षित द्वारा पूछे गये प्रश्न

राजोवाच

ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च ।
यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देव-दर्शनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

राजा—राजा ने; उवाच—कहा; ब्रह्मणा—ब्रह्माजी द्वारा; चोदितः—आदेशित होकर; ब्रह्मन्—हे विद्वान् ब्राह्मण (शुकदेव गोस्वामी); गुण-आख्याने—दिव्य गुणों के वर्णन में; अगुणस्य—गुणरहित भगवान् का; च—तथा; यस्मै यस्मै—तथा जिनको; यथा—जितना; प्राह—बतलाया; नारदः—नारद मुनि ने; देव-दर्शनः—वह, जिसका श्रोता देवता के समान उत्तम है।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि नारद मुनि ने, जिनके श्रोता श्रीब्रह्मा द्वारा उपदेशित भाग्यशाली श्रोता हैं, किस प्रकार निर्गुण भगवान् के दिव्य गुणों का वर्णन किया और वे किन-किन के समक्ष बोले ?

तात्पर्य : देवर्षि नारद को सीधे ब्रह्माजी ने उपदेश दिया था। ब्रह्मा को भी परमेश्वर ने स्वयं उपदेश दिया था; अतः नारद द्वारा विविध शिष्यों को दिये गये उपदेश स्वयं परमेश्वर द्वारा प्रदत्त उपदेशों के तुल्य हैं। वैदिक ज्ञान को समझने की यही विधि है। यह शिष्य-परम्परा द्वारा भगवान् से प्राप्त होकर अवरोही क्रम से सारे विश्व में फैलता है। किन्तु मानसिक चिन्तकों से वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर ही नहीं आता। अतः नारद मुनि जहाँ कहीं भी जाते हैं, ईश्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका प्राकट्य परमेश्वर के ही समान उत्तम होता है। इसी प्रकार जो शिष्य-परम्परा दिव्य उपदेश का कड़ाई से अनुसरण करती है, वही प्रामाणिक होती है और इन प्रामाणिक गुरुओं की परीक्षा यह है कि प्रारम्भ में भगवान् ने अपने भक्तों को जो उपदेश दिया था और अब शिष्य-परम्परा में जो उपदेश दिया जाता है उसमें कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। नारद मुनि ने भगवान् के दिव्य ज्ञान को जिस प्रकार वितरित किया उसका वर्णन बाद के स्कन्धों में किया जाएगा।

ऐसा भी प्रतीत हो सकता है कि भौतिक सृष्टि के पूर्व भी भगवान् का अस्तित्व था; फलतः उनके दिव्य नाम, गुण इत्यादि किसी भौतिक गुण को सूचित करने वाले नहीं हैं। अतः जब भी भगवान् को

अगुण कहा जाता है, तो इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वे गुणरहित हैं वरन् यह कि उनमें सतो, रजो या तमोगुण जैसे भौतिक गुण नहीं पाये जाते जो बद्धजीवों में पाये जाते हैं। समस्त भौतिक अवधारणाओं से परे होने के कारण ही उन्हें अगुण कहा जाता है।

एतद् वेदितुमिच्छामि तत्त्वं तत्त्व-विदां वर ।

हरेरद्भुत-वीर्यस्य कथा लोक-सुमङ्गलाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एतद्—यह; वेदितुम्—जानने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; तत्त्वम्—सच्चाई; तत्त्व-विदाम्—तत्त्वविदों का; वर—हे श्रेष्ठ; हरेः—भगवान् का; अद्भुत-वीर्यस्य—अद्भुत शक्तिसम्पन्न की; कथाः—कथा; लोक—समस्त लोकों के लिए; सु-मङ्गलाः—शुभ, कल्याणकर।

राजा ने कहा : मैं जानने का इच्छुक हूँ। अद्भुत शक्तियों से सम्पन्न भगवान् से सम्बन्धित कथाएँ निश्चय ही समस्त लोकों के प्राणियों के लिए शुभ हैं।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत परमेश्वर की लीलाओं के वर्णनों से भरा पड़ा है और प्रत्येक लोक में निवास करने वाले जीवों के लिए मंगलकारी है। जो इसे सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित मान बैठता है, वह निश्चित रूप से भ्रम में रहता है। श्रीमद्भागवत भगवान् के समस्त भक्तों के लिए अत्यन्त प्रिय शास्त्र है, लेकिन अभक्तों के लिए भी यह कल्याणप्रद है, क्योंकि इसके अनुसार भौतिक शक्ति के चक्कर में पड़े हुए अभक्त लोग भी चंगुल से छूट जाते हैं यदि वे श्रद्धा तथा मनोयोग से शिष्य-परम्परा के समुचित स्रोत से श्रीमद्भागवत की कथा को सुनते हैं।

कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि ।

कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

कथयस्व—कृपया आगे कहें; महाभाग—हे परमभाग्यशाली; यथा—जिस प्रकार; अहम्—मैं; अखिल-आत्मनि—परमात्मा को; कृष्णे—भगवान् श्रीकृष्ण को; निवेश्य—स्थापित करके; निःसङ्गम्—भौतिक गुणों से मुक्त होकर; मनः—मन; त्यक्ष्ये—परित्याग कर सकूँ; कलेवरम्—शरीर।

हे परम भाग्यशाली शुकदेव गोस्वामी, आप मुझे कृपा करके श्रीमद्भागवत सुनाते रहें जिससे मैं अपना मन परमात्मा, भगवान् श्रीकृष्ण में स्थिर कर सकूँ और इस प्रकार भौतिक गुणों से सर्वथा मुक्त होकर अपना यह शरीर त्याग सकूँ।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में वर्णित कथा में पूर्ण रूप से तन्मय होने का अर्थ है परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ निरन्तर साहचर्य और ऐसे साहचर्य का अर्थ होता है भौतिक गुणों से मुक्त हो जाना। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं और भौतिक कल्मष अन्धकार के तुल्य हैं। जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति में अंधकार हट जाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का निरन्तर साहचर्य भौतिक गुणों के कल्मष को दूर करने वाला है। भौतिक गुणों का कल्मष बारबार जन्म तथा मृत्यु का कारण है और भौतिक गुणों से मुक्ति गुणातीत (सत्व) होना है। मुक्ति के इस रहस्य को जान लेने के कारण महाराज परीक्षित को अब आत्म-साक्षात्कार हो चुका था क्योंकि श्रील शुकदेव गोस्वामी ने राजा को बता दिया था कि परम सिद्धि तो मृत्यु के समय नारायण के स्मरण में निहित है। महाराज परीक्षित को सात दिनों के पश्चात् शरीर त्याग करना था, अतः उन्होंने *श्रीमद्भागवत* की कथा के माध्यम से भगवान् का स्मरण करते रहने और इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष पूर्णतः सचेष्ट रहकर शरीर त्यागने का निश्चय किया।

जो लोग वृत्तिक रूप में *श्रीमद्भागवत* सुनते हैं उनका सुनना महाराज परीक्षित के दिव्य श्रवण करने से भिन्न होता है। महाराज परीक्षित को परम सत्य रूप भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात्कार हो चुका था। सकाम भौतिकतावादी मुक्त-आत्मा नहीं होता; वह *श्रीमद्भागवत* को सुनकर कोई भौतिक लाभ उठाना चाहता है। निस्सन्देह ऐसे श्रोता, वृत्तिकवाचक से *श्रीमद्भागवत* सुनकर कुछ यथेष्ट भौतिक लाभ उठा सकते हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि एक सप्ताह तक *श्रीमद्भागवत* का कृत्रिम श्रवण करना महाराज परीक्षित द्वारा श्रवण करने के समान लाभदायक है।

विचारवान् व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह आत्म-साक्षात्कार प्राप्त व्यक्ति से *श्रीमद्भागवत* सुने और वृत्तिक लोगों के द्वारा ठगा न जाय। मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन के अन्तिम समय तक इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* सुनता रहे जिससे वास्तव में भगवान् की दिव्य संगति प्राप्त हो सके और इस प्रकार मुक्त हो सके।

यद्यपि महाराज परीक्षित ने अपना राज्य तथा परिवार, जो भौतिकतावाद के सर्वाकर्षक अंग हैं, पहले ही त्याग दिये थे किन्तु तो भी वे अपने भौतिक शरीर के प्रति सचेत थे। वे भगवान् की निरन्तर संगति द्वारा ऐसे बन्धन से भी मुक्त होना चाह रहे थे।

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्व-चेष्टितम् ।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

शृण्वतः—सुनने वालों का; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; नित्यम्—नियमित रूप से सदैव; गृणतः—ग्रहण करते हुए; च—भी; स्व-चेष्टितम्—अपने प्रयास से गम्भीरतापूर्वक; कालेन—अवधि; न—नहीं; अति-दीर्घेण—अत्यन्त दीर्घकाल; भगवान्—श्रीभगवान्; विशते—प्रकट होते हैं; हृदि—हृदय में।

जो लोग नियमित रूप से श्रीमद्भागवत सुनते हैं और इसे अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करते हैं, उनके हृदय में अल्प समय में ही भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते हैं।

तात्पर्य : सस्ते भक्त या भौतिकतावाद में ग्रस्त भक्त आवश्यक योग्यताएँ न होते हुए भी भगवान् को साक्षात् देखने के लिए बहुत अधिक लालयित रहते हैं। ऐसे निम्नकोटि के भक्तों को यह जान लेना चाहिए कि भौतिक आसक्ति तथा भगवान् का साक्षात्कार एकसाथ नहीं रह सकते। यह ऐसी यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं है कि परमेश्वर *भागवत*-वाचक निम्नकोटि के भौतिकतावादी छद्म भक्तों के लिए यह कार्य कर सकें। ये पेशेवर लोग ऐसा करने में अक्षम हैं, क्योंकि न तो उन्हें आत्म-साक्षात्कार हुआ रहता है और न ही श्रोताओं की मुक्ति में उनकी कोई अभि रुचि होती है। वे तो अपनी गृहस्थी बनाये रखकर अपने पेशे से कुछ भौतिक लाभ उठाने में रुचि रखते हैं। महाराज परीक्षित को केवल सात दिन जीवित रहना था, किन्तु दूसरों के हित में वे स्वतः बताते हैं कि लोग *श्रीमद्भागवत* को नित्य अपने प्रयास से तथा भक्तिपूर्वक सुनें। इससे हृदय के भीतर श्रीकृष्ण का शीघ्र दर्शन करने में उन्हें सहायता मिलेगी।

किन्तु छद्म-भक्त अपनी सनक के अनुसार भगवान् का दर्शन करने का बहुत इच्छुक रहता है। वह *श्रीमद्भागवत* को नित्य सुनने के लिए न तो कोई प्रयास करता है और न ही भौतिक लाभ की इच्छा से विरक्त हो पाता है। यह महाराज परीक्षित जैसे अधिकारी द्वारा संस्तुत विधि नहीं है जिन्होंने *श्रीमद्भागवत* सुनकर उससे लाभ उठाया।

प्रविष्टः कर्ण-रन्ध्रेण स्वानां भाव-सरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

प्रविष्टः—इस प्रकार प्रवेश करके; कर्ण-रन्ध्रेण—कान के छिद्रों से; स्वानाम्—अपनी मुक्त स्थिति के अनुसार; भाव—स्वाभाविक सम्बन्ध; सरः-रुहम्—कमल का फूल; धुनोति—निर्मल करता है; शमलम्—काम, क्रोध ईर्ष्या तथा गर्व जैसे गुण को; कृष्णः—भगवान् श्रीकृष्ण; सलिलस्य—जलाशय का; यथा—जिस प्रकार; शरत्—शरद ऋतु।

परमात्मा रूप भगवान् श्रीकृष्ण का शब्दावतार (अर्थात् श्रीमद्भागवत) स्वरूप-सिद्ध भक्त के हृदय में प्रवेश करता है, उसके भावात्मक सम्बन्ध रूपी कमल-पुष्प पर आसीन हो जाता है और इस प्रकार काम, क्रोध तथा लोभ जैसी भौतिक संगति की धूल को धो डालता है। इस प्रकार यह गँदले जल के तालाबों में शरद ऋतु की वर्षा के समान कार्य करता है।

तात्पर्य : कहा जाता है कि भगवान् का एक अकेला शुद्ध भक्त संसार के समस्त पतितों को उबार सकता है। अतः जिसे नारद या शुकदेव गोस्वामी जैसे शुद्ध भक्त का विश्वास प्राप्त है और जो अपने गुरु से शक्ति प्राप्त करता है, जिस प्रकार नारद ने ब्रह्माजी से प्राप्त की थी, वह न केवल स्वयं को माया के चंगुल से छुड़ाता है वरन् अपनी शुद्ध तथा शक्तिसम्पन्न भक्ति की शक्ति से सारे संसार को उबार सकता है। गँदले जलाशयों में गिरने वाली शारदीय वर्षा से उपमा देना अत्यन्त उपयुक्त है। वर्षा ऋतु में सारी नदियों का पानी गँदला हो जाता है किन्तु शरद ऋतु में, जब हल्की वर्षा होती है, तो संसार भर में नदियों का जल स्वच्छ हो जाता है। किसी रसायन की अल्प मात्रा से शहरी जलागार की तरह किसी छोटे जलाशय का जल स्वच्छ किया जा सकता है, किन्तु ऐसे अल्प प्रयास से नदियों का जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता। किन्तु भगवान् का शक्तिसम्पन्न शुद्ध भक्त न केवल अपने को उबार सकता है, वरन् अपनी संगति से अनेकों को उबारता है।

दूसरे शब्दों में, अन्य विधियों से (यथा ज्ञान-मार्ग या योगासन द्वारा) अपना ही कलुषित हृदय स्वच्छ किया जा सकता है, किन्तु भगवद्भक्ति इतनी शक्तिशाली होती है कि वह शुद्ध शक्तिसम्पन्न भक्त की भक्ति से समस्त लोगों के हृदयों को स्वच्छ कर सकती है। नारद, शुकदेव गोस्वामी, भगवान् चैतन्य, छहों गोस्वामी तथा उनके बाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर तथा श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इत्यादि जैसे भगवान् के वास्तविक प्रतिनिधि अपनी शक्तिसम्पन्न भक्ति के द्वारा सभी लोगों का उद्धार कर सकते हैं।

श्रीमद्भागवत को सुनने के सद्प्रयासों द्वारा मनुष्य को भगवान् के साथ दास, सखा, वात्सल्य अथवा माधुर्य प्रेम के दिव्य भाव में अपने स्वाभाविक सम्बन्ध का बोध हो जाता है और इस प्रकार के

आत्म-साक्षात्कार से वह तुरन्त भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति का भागी बन जाता है। नारद जैसे समस्त शुद्ध भक्त न केवल स्वरूपसिद्ध जीव थे, वरन् वे स्वान्तःसुखाय उपदेश देने के कार्य में लगे रहते थे और इस तरह से माया के गुणों में फँसे अनेक हीन जीवों का उद्धार करते थे। वे इतने शक्तिसम्पन्न इसीलिए हो सके, क्योंकि वे नियमित रूप से *भागवत* के सिद्धान्तों का श्रवण एवं पूजन करते थे। संचित हो चुकी भौतिक वासनाएँ, भगवान् के अपने प्रयासों से, ऐसे कार्यों द्वारा स्वच्छ हो जाती हैं। भगवान् जीवों के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे भक्ति-मय सेवा से प्रकट होते हैं।

ज्ञान के अनुशीलन या योग द्वारा हृदय की शुद्धि किसी एक व्यक्ति के लिए कुछ काल के लिए उपयुक्त सिद्ध हो सकती है, किन्तु यह स्थिर जल की अल्प मात्रा को रासायनिक विधियों से स्वच्छ करने के समान है। इस प्रकार से शुद्ध किया जल, मैल के कुछ काल तक तलछट बैठ जाने के कारण स्वच्छ रह सकता है, किन्तु तनिक भी हिलाने पर पुनः गँदला हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् की भक्ति-मय सेवा ही हृदय को सदा के लिए स्वच्छ बनाने की एकमात्र विधि है। अन्य विधियाँ भले ही कुछसमय के लिए श्रेष्ठ हों, किन्तु मन के विचलित होने से पुनः गँदले होने की आशंका रहती है। माया के चंगुल से मुक्ति के लिए सर्वोत्तम विधि यही है कि भगवद्भक्ति के साथ ही नियमित रूप से *श्रीमद्भागवत* का ध्यानपूर्वक श्रवण किया जाय।

धौतात्मा पुरुषः कृष्ण-पाद-मूलं न मुञ्चति ।

मुक्त -सर्व-परिक्लेशः पान्थः स्व-शरणं यथा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

धौत-आत्मा—जिनके हृदय विमल हो चुके हैं; पुरुषः—जीव; कृष्ण—श्रीभगवान् के; पाद-मूलम्—चरणकमल की शरण; न—नहीं; मुञ्चति—छोड़ता है; मुक्त—मुक्त; सर्व—समस्त; परिक्लेशः—जीवन के समस्त क्लेशों का; पान्थः—पथिक; स्व-शरणम्—अपने धाम में; यथा—जिस प्रकार।

भगवान् का शुद्ध भक्त, जिस का हृदय एक बार भक्ति के द्वारा स्वच्छ हो चुका होता है, वह श्रीकृष्ण के चरणकमलों का कभी भी परित्याग नहीं करता, क्योंकि उसे भगवान् वैसी ही परम तुष्टि देते हैं, जैसी कि कष्टकारी यात्रा के पश्चात् पथिक को अपने घर में प्राप्त होती है।

तात्पर्य : जो परमेश्वर श्रीकृष्ण का शुद्ध भक्त नहीं है उसका हृदय पूर्णतः स्वच्छ नहीं होता, किन्तु पूर्णतः शुद्ध हृदय वाला व्यक्ति भगवान् की भक्ति कभी नहीं छोड़ता। ब्रह्माजी ने नारद को

श्रीमद्भागवत का उपदेश देते समय जैसा आदेश दिया था, उस प्रकार की भक्ति का पालन करने में कभी-कभी उपदेश कार्य में लगे हुए भगवान् के प्रतिनिधि को अनेक तथाकथित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जगाई तथा माधार्ई नामक दो पतितों का उद्धार करते समय श्रीनित्यानन्द के साथ ऐसा ही हुआ। इसी प्रकार अविश्वासियों द्वारा जीससक्राइस्ट को क्रूस पर चढ़ा दिया गया। किन्तु उपदेशक भक्त ऐसे कष्टों को, जो ऊपर से बहुत घोर दिखते हैं, सहर्ष सहन कर लेते हैं, क्योंकि ऐसे कार्यों से भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं जिससे भक्तों को दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। यद्यपि प्रह्लाद महाराज को घोर यातनाएँ सहनी पड़ीं, तो भी उन्होंने भगवान् के चरणकमलों को विस्मृत नहीं किया। इसका एकमात्र कारण यह है कि शुद्ध भक्त का हृदय इतना पवित्र होता है कि वह किसी भी स्थिति में भगवान् कृष्ण की शरण का परित्याग नहीं कर सकता। ऐसी सेवा में कोई स्वार्थ निहित नहीं रहता। ज्ञानियों को ज्ञान का अनुशीलन अथवा योगियों को शारीरिक आसन का अन्ततः परित्याग करना होता है, किन्तु भक्त भगवान् की भक्ति नहीं छोड़ सकता, क्योंकि उसे गुरु से इसका आदेश प्राप्त हुआ होता है। नारद तथा नित्यानन्द प्रभु जैसे शुद्ध भक्त गुरु की आज्ञा को प्राणाधार मानते हैं। वे अपने भविष्य की तनिक भी परवाह नहीं करते। वे इस मामले को बहुत गंभीरता से लेते हैं क्योंकि यह आदेश भगवान् के प्रतिनिधि से या स्वयं भगवान् से प्राप्त हुआ होता है।

यहाँ पर दिया गया उदाहरण अत्यन्त उपयुक्त है। पथिक (यात्री) धन कमाने के लिए घर छोड़ कर दूर-दूर के देशों को जाता है, कभी वह वन से होकर जाता है, तो कभी समुद्र से होकर या कभी कभी पर्वतों की चोटियों से होकर जाता है। निस्सन्देह ऐसे अपरिचित स्थानों में जाने पर पथिक को अनेक कष्ट मिलते हैं। किन्तु ये सारे कष्ट उस क्षण कम हो जाते हैं जब वह अपने परिवार का स्मरण करता है और फिर जब वह घर लौट आता है, तो मार्ग के सारे कष्टों को भूल जाता है।

भगवान् का शुद्ध भक्त भगवान् के साथ पारिवारिक रूप में बँधा होता है, अतः वह अपने कर्तव्य को बिना रुके प्रेमपूर्वक निभाता रहता है।

यदधातु-मतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः ।
यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यत्—क्योंकि; अथात्—मतः—भौतिक रूप से निर्मित न होते हुए; ब्रह्मन्—हे विद्वान् ब्राह्मण; देह—भौतिक शरीर; आरम्भः—शुभारम्भ; अस्य—जीव का; धातुभिः—पदार्थ से; यदृच्छया—अकारण, आकस्मिक; हेतुना—किसी कारण से; वा—अथवा; भवन्तः—आप; जानते—जैसा जानते हों; यथा—उसी रूप में मुझे बताएँ।

हे विद्वान् ब्राह्मण, दिव्य आत्मा भौतिक देह से पृथक् है। तो फिर क्या उसे (आत्मा को) किसी कारणवश या अकस्मात् ही देह की प्राप्ति होती है? आपको यह ज्ञात है, अतः कृपा करके मुझे समझाइये।

तात्पर्य : विशिष्ट भक्त होने के कारण महाराज परीक्षित शिष्य-पराम्परा से ब्रह्माजी के प्रतिनिधी द्वारा श्रीमद्भागवत सुनने के महत्त्व की पुष्टि से ही सन्तुष्ट नहीं होते वरन् वे श्रीमद्भागवत के दार्शनिक आधार को भी स्थापित करना चाहते हैं। श्रीमद्भागवत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विषयक तत्त्व-ज्ञान है, अतः किसी जिज्ञासु के मन में इसके विषय में जितने भी प्रश्न उठें, उनका स्पष्टीकरण प्रामाणिक कथनों के द्वारा होना चाहिए। भक्ति-मय सेवा के पथ का पथिक ईश्वर तथा जीव विषयक सारी जिज्ञासाएँ अपने गुरु के समक्ष रख सकता है। भगवद्गीता के साथ ही साथ श्रीमद्भागवत से यह स्पष्ट है कि भगवान् तथा जीव गुणात्मक रूप से एक हैं। भौतिक संसार में बद्ध अवस्था में होने के कारण, जीव भौतिक शरीर का निरन्तर देहान्तरण करता हुआ अनेक योनियों में जाता रहता है। किन्तु भगवान् के अंश द्वारा शरीर धारण करने के कारण कौन-कौन से हैं? महाराज परीक्षित, आत्म-साक्षात्कार के पथ तथा भगवान् की भक्ति में अग्रसर होने वाले समस्त वर्गों के प्राणियों के हेतु इस महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त कर रहे हैं।

अप्रत्यक्ष रूप से इसकी पुष्टि होती है कि परमात्मा शरीर को इस प्रकार बदलता नहीं रहता। आध्यात्मिक दृष्टि से वह पूर्ण है और बद्ध-जीवों के विपरीत उसके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। मुक्त जीव, जो सदेह भगवान् के साथ रहते हैं, भगवान् के ही समान होते हैं। केवल वे बद्धजीव अपना शरीर बदलते हैं, जो मुक्ति की प्रतीक्षा में हैं, किन्तु यह क्रिया सर्वप्रथम किस प्रकार प्रारम्भ हुई?

भक्तियोग में प्रथम सोपान गुरु की शरण ग्रहण करना और फिर भक्ति के विषय में गुरु से जिज्ञासा करना है। ऐसी जिज्ञासा अनिवार्य है, जिससे भक्तिमार्ग में होने वाले समस्त प्रकार के अपराधों के प्रति

निश्चेष्टता बनी रहे। महाराज परीक्षित की भाँति भक्ति में स्थित होते हुए भी भक्त को आत्मसिद्ध गुरु से इसके विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, गुरु को भी अत्यन्त सक्षम एवं पारंगत होना चाहिए जिससे वह भक्तों की इन समस्त जिज्ञासाओं को शमित कर सके। अतः जो प्रामाणिक शास्त्रों में दक्ष न हो और इन संगत जिज्ञासाओं का उत्तर देने में समर्थ न हो, उसे भौतिक लाभ के लिए गुरु बनने का स्वाँग नहीं करना चाहिए। जो शिष्य का उद्धार करने में असमर्थ हो उसका गुरु बनना है।

आसीद् यदुदरात् पद्मं लोक-संस्थान-लक्षणम् ।

यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ।

तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

आसीत्—जिस प्रकार निकला; यत्-उदरात्—जिसके उदरसे; पद्मम्—कमल का फूल; लोक—संसार; संस्थान—स्थिति; लक्षणम्—लक्षण; यावान्—जैसा था; अयम्—यह; वै—निश्चय ही; पुरुषः—श्रीभगवान्; इयत्ता—माप; अवयवैः—अवयवों से; पृथक्—भिन्न; तावान्—वैसा; असौ—वह; इति प्रोक्तः—ऐसा कहा जाता है; संस्था—स्थिति; अवयववान्—अवयव से युक्त; इव—सदृश।

यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जिनके उदर से कमलनाल बाहर निकला है, अपने माप के अनुसार विराट शरीर धारण कर सकते हैं, तो फिर भगवान् के शरीर तथा सामान्य जीवात्माओं के शरीर में कौन-सा विशेष अन्तर है?

तात्पर्य : यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि महाराज परीक्षित कितनी बुद्धिमानी से भगवान् के दिव्य शरीर के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने गुरु से प्रश्न करते हैं। इसके पूर्व कई बार कहा जा चुका है कि भगवान् ने कारणोदकशायी विष्णु के सदृश विराट शरीर धारण किया जिनके रोमकूपों से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए। गर्भोदकशायी विष्णु के शरीर से निकले कमलनाल के शीर्ष पर कमल पुष्प होता है, जिससे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। निस्सन्देह, भौतिक संसार की रचना के समय भगवान् विराट शरीर धारण करते हैं और जीवात्माएँ भी आवश्यकतानुसार लघु या दीर्घ शरीर प्राप्त करती हैं। उदाहरणार्थ, हाथी को आवश्यकतानुसार विशाल देह प्राप्त होती है और चींटी को अपनी आवश्यकता के अनुसार लघु देह मिलती है। इसी तरह, यदि भगवान् ब्रह्माण्डों या किसी ब्रह्माण्ड के लोकों को समाहित करने के लिए विराट शरीर धारण करते हैं, तो आवश्यकतानुसार किसी विशेष प्रकार के शरीर को धारण करने के नियम में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जीव तथा ईश्वर को केवल शरीर के आकार

(प्रमाप) के कारण पर विभेदित नहीं किया जा सकता। अतः इसका उत्तर इस पर निर्भर करता है कि भगवान् के शरीर का सामान्य जीव के शरीर की तुलना में विशिष्ट महत्त्व क्या है।

अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ।
ददृशे येन तद्रूपं नाभि-पद्म-समुद्भवः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अजः—किसी भौतिक साधन के बिना जन्म लेने वाला; सृजति—सृष्टि करता है; भूतानि—जीवों को; भूत-आत्मा—पदार्थ से बने शरीर वाले; यत्—जिसकी; अनुग्रहात्—कृपा से; ददृशे—देख सके; येन—जिसके द्वारा; तत्-रूपम्—उसके शरीर का स्वरूप; नाभि—नाभि से; पद्म—कमल का फूल; समुद्भवः—उत्पन्न।

ब्रह्माजी जो किसी भौतिक स्रोत से नहीं, अपितु भगवान् की नाभि से प्रकट होने वाले कमल के फूल से उत्पन्न हुए हैं, वे उन सबके स्रष्टा हैं, जो इस संसार में जन्म लेते हैं। निस्सन्देह भगवत्कृपा से ही ब्रह्माजी भगवान् के स्वरूप को देख सके।

तात्पर्य : ब्रह्मा प्रथम सजीव प्राणी हैं, जो अजः कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने भौतिक संसार में उत्पन्न किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लिया। वे भगवान् के कमल-पुष्प के शारीरिक विस्तार से सीधे प्रकट हुए थे। इस प्रकार यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि भगवान् तथा ब्रह्मा के शरीर एक ही तरह के हैं या भिन्न-भिन्न। इसे भी अच्छी तरह समझ लेना होगा। किन्तु एक बात जो निश्चित है, वह यह है कि ब्रह्माजी श्रीभगवान् की कृपा पर पूर्णतः आश्रित थे, क्योंकि जन्म के पश्चात् वे भगवान् की कृपा से ही जीवों को उत्पन्न कर सके थे और भगवान् का दर्शन कर सके थे। किन्तु उन्होंने भगवान् के जिस रूप को देखा था, वह ब्रह्मा जैसे गुण वाला था या नहीं, यह चकराने वाला प्रश्न है। इसीलिए महाराज परीक्षित इसके उत्तर को श्रील शुकदेव गोस्वामी से स्पष्ट कर लेना चाहते थे।

स चापि यत्र पुरुषो विश्व-स्थित्युद्भवाप्ययः ।
मुक्त्वात्म-मायां मायेशः शेते सर्व-गुहाशयः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सः—वह; च—भी; अपि—जैसाकि वह है; यत्र—जहाँ; पुरुषः—भगवान्; विश्व—संसार; स्थिति—पालन; उद्भव—सृष्टि; अप्ययः—संहार; मुक्त्वा—बिना स्पर्श किये; आत्म-मायाम्—अपनी शक्ति; माया-ईशः—समस्त शक्तियों का स्वामी; शेते—शयन करता है; सर्व-गुहा-शयः—प्रत्येक हृदय में स्थित रहने वाला।

कृपया उन भगवान् के विषय में भी बताएँ जो प्रत्येक हृदय में परमात्मा और समस्त शक्तियों

के स्वामी के रूप में स्थित हैं, किन्तु जिनकी बहिरंगा शक्ति उनका स्पर्श तक नहीं कर पाती ।

तात्पर्य : निश्चित रूप से, ब्रह्मा ने भगवान् के जिस रूप को देखा था वह दिव्य रहा होगा, अन्यथा वे बिना स्पर्श किये सृजनात्मक शक्ति पर किस प्रकार निर्भर रहे होते? ऐसा ज्ञात है कि वही पुरुष प्रत्येक जीवात्मा के हृदय में स्थित है। इसकी भी समुचित व्याख्या होनी चाहिए।

पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्व-कल्पिताः ।

लोकैरमुष्यावयवाः स-पालैरिति शुश्रुम ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पुरुष—विराट पुरुष; अवयवैः—शरीर के विभिन्न भागों से; लोकाः—समस्त लोक; स-पालाः—अपने-अपने पालकों सहित; पूर्व—पहले; कल्पिताः—विवेचित; लोकैः—विभिन्न लोकों द्वारा; अमुष्य—उसके; अवयवाः—शरीर के विभिन्न अंग; स-पालैः—पालकों सहित; इति—इस प्रकार; शुश्रुम—मैंने सुना है।

हे विद्वान् ब्राह्मण, इसके पूर्व व्याख्या की गई थी कि ब्रह्माण्ड के समस्त लोक अपने-अपने लोकपालकों सहित विराट पुरुष के विराट शरीर के विभिन्न अंगों में ही स्थित हैं। मैंने भी यह सुना है कि विभिन्न लोकमंडल विराट पुरुष के विराट शरीर में स्थित माने जाते हैं। किन्तु उनकी वास्तविक स्थिति क्या है? कृपा करके मुझे समझाइये।

यावान् कल्पोविकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ।

भूत-भव्य-भवच्छब्द आयुर्मानं च यत् सतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यावान्—जिस रूप में; कल्पः—सृष्टि तथा प्रलय के बीच की अवधि; विकल्पः—गौण सृष्टि तथा प्रलय; वा—अथवा; यथा—और भी; कालः—समय; अनुमीयते—मापा जाता है; भूत—विगत; भव्य—भविष्य; भवत्—वर्तमान; शब्दः—शब्द; आयुः—जीवन अवधि, उग्र; मानम्—माप; च—भी; यत्—जो; सतः—समस्त लोकों के जीवों का।

कृपा करके सृष्टि तथा प्रलय के मध्य की अवधि (कल्प) तथा अन्य गौण सृष्टियों (विकल्प) एवं भूत, वर्तमान तथा भविष्य शब्द से सूचित होने वाले काल के विषय में भी मुझे बताएँ। साथ ही, ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों के विभिन्न जीवों यथा देवों, मनुष्यों इत्यादि की आयु की अवधि के विषय में भी मुझे बताएँ।

तात्पर्य : भूत, वर्तमान तथा भविष्य, ये काल के विभिन्न अंश हैं जिनसे इस ब्रह्माण्ड पर तथा इसकी सारी की सारी साज-सामग्री में से, जिसमें विभिन्न लोकों के प्राणी सम्मिलित हैं, जीवन की

अवधि (आयु) सूचित होती है।

कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ।

यावत्यः कर्म-गतयो यादृशीर्द्विज-सत्तम ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

कालस्य—शाश्वत काल का; अनुगतिः—प्रारम्भ; या तु—वे जिस रूप में; लक्ष्यते—अनुभव किये जाते हैं; अण्वी—लघु; बृहती—विशाल; अपि—भी; यावत्यः—जब तक; कर्म-गतयः—कर्म के अनुसार; यादृशीः—जिस प्रकार की; द्विज-सत्तम—हे ब्राह्मणों में शुद्धतम।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, कृपा करके मुझे काल की लघु तथा दीर्घ अवधियों एवं कर्म की प्रक्रिया के क्रम में काल के शुभारम्भ के विषय में भी बतलाएँ।

यस्मिन् कर्म-समावायो यथा येनोपगृह्यते ।

गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें; कर्म—कर्म; समावायः—संग्रह; यथा—जहाँ तक; येन—जिससे; उपगृह्यते—ग्रहण करता है; गुणानाम्—विभिन्न गुणों का; गुणिनाम्—जीवों का; च—भी; एव—निश्चय ही; परिणामम्—बची हुई, शेष; अभीप्सताम्—आकांक्षाओं का।

इसके आगे आप कृपा करके बताएँ कि किस प्रकार भौतिक प्रकृति के विभिन्न गुणों से उत्पन्न फलों का आनुपातिक संचय इच्छा करनेवाले जीव पर अपना प्रभाव दिखाते हुए उसे विभिन्न योनियों में—देवताओं से लेकर अत्यन्त क्षुद्र प्राणियों तक को—ऊपर उठाता या नीचे गिराता है।

तात्पर्य : प्रकृति के भौतिक गुणों में समस्त कर्म और कर्मफल, लघु रूप में अथवा बृहद् रूप में, संचित होते रहते हैं और इस प्रकार इन संचित कर्मों के फल उसी अनुपात में प्रकट होते हैं। महाराज परीक्षित ब्राह्मणश्रेष्ठ शुकदेव गोस्वामी से पूछते हैं कि ये कर्म तथा उनके फल किस प्रकार घटित होते हैं, इसके लिए कौन सी विभिन्न विधियाँ हैं और वे किस अनुपात में कार्यशील होते हैं ?

उच्च लोक, जिन्हें स्वर्ग के देवों का धाम कहते हैं, अन्तरिक्षयान के बल पर नहीं (जैसी कि अब अनुभवहीन वैज्ञानिकों द्वारा कल्पना की जाती है), अपितु सात्त्विक कर्मों से प्राप्त किये जाते हैं।

जिस लोक में हम अब रह रहे हैं उसमें भी जिस देश के लोग समृद्ध हैं उसके भीतर विदेशियों का

प्रवेश प्रतिबन्धित है। उदाहरणार्थ, अमरीकी सरकार ने कम समृद्ध देशों से आने वाले विदेशियों के प्रवेश में अनेक प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। इसका कारण यह है कि अमरीकी ऐसे किसी विदेशी के साथ अपनी सम्पन्नता में साझेदार नहीं बनना चाहते, जिन्होंने अपने आप को अमरीका के नागरिकों की भाँति योग्य नहीं बनाया है। यही मनोवृत्ति उन लोकों में पाई जाती है जहाँ के निवासी अधिक बुद्धिमान हैं। उच्च लोकों का रहन-सहन सतोगुणी है, अतः जो भी चन्द्र, सूर्य तथा शुक्र जैसे उच्चतर लोकों में प्रवेश करना चाहता है उसे सतोगुणी कर्मों द्वारा पूर्ण रूप से योग्य होना चाहिए।

महाराज परीक्षित के प्रश्न सतोगुणी कर्मों के अनुपात पर आधारित हैं जिनके कारण इस लोक का प्राणी ब्रह्माण्ड के उच्चतम लोकों में जाने के योग्य हो सकता है।

जिस लोक में हम रह रहे हैं उसमें भी जब तक कोई आनुपातिक रूप से उत्तम कर्म नहीं करता तब तक उसे समाज में अच्छा स्थान प्राप्त नहीं होता। कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति की कुर्सी पर बिना उस पद के लिए योग्यता के बल-प्रयोग से नहीं बैठ सकता। इसी प्रकार जब तक इस जीवन में उत्तम कर्म नहीं किये जाते, तब तक उच्चतर लोकों में प्रविष्ट नहीं हुआ जा सकता। रजो तथा तमोगुणी व्यक्ति केवल इलेक्ट्रानिक यंत्रों के बल से उच्च लोकों में प्रवेश नहीं कर सकते।

भगवद्गीता (९.२५), के कथन के अनुसार जो लोग उच्चतर लोकों में जाने के लिए अपने को योग्य बनाते हैं, वे वहाँ पहुँच सकते हैं; इसी प्रकार जो लोग पितृलोक जाना चाहते हैं, वे वहाँ जा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार से, इस पृथ्वी पर रह कर जो दशा सुधारना चाहते हैं, वे ऐसा कर सकते हैं और जो लोग भगवान् के धाम जाने के काम में लगे हैं, वे वैसा परिणाम पा सकते हैं। सतोगुण में सम्पन्न समस्त कर्म, भक्तियुक्त शुभ कर्म, भक्तियुक्त ज्ञान का अनुशीलन, भक्तियुक्त योग तथा (अन्त में) नितान्त शुद्ध भक्ति के नाम से जाने जाते हैं। यह शुद्ध भक्ति दिव्य होती है और परा भक्ति कहलाती है। केवल इसी के द्वारा ईश्वर के दिव्य धाम को पाया जा सकता है। ऐसा दिव्य धाम कोई पौराणिक कल्पना नहीं है, अपितु उतना ही वास्तविक है जितना कि चन्द्रमा। ईश्वर तथा ईश्वर के धाम को समझने के लिए मनुष्य में दिव्य गुण होने चाहिए।

भू-पाताल-ककुब्जोम-ग्रह-नक्षत्र-भूभृताम् ।

सरित्समुद्र-द्वीपानां सम्भवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

भू-पाताल—भूमि के नीचे; ककुब्ज—स्वर्ग की चारों दिशाएँ; व्योम—आकाश; ग्रह—लोक, ग्रह; नक्षत्र—तारे; भूभृताम्—पर्वतों का; सरित्—नदी; समुद्र—समुद्र; द्वीपानाम्—द्वीपों की; सम्भवः—उत्पत्ति; च—भी; एतत्—उनके; ओकसाम्—निवासियों का ।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, कृपा करके यह भी बताएँ कि ब्रह्माण्ड भर के गोलकों, स्वर्ग की चारों दिशाओं, आकाश, ग्रहों, नक्षत्रों, पर्वतों, नदियों, समुद्रों तथा द्वीपों एवं इन सबके विविध प्रकार के निवासियों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

तात्पर्य : विभिन्न किस्म के भूभागों इत्यादि के वासी भिन्न प्रकार से स्थित होते हैं और वे सभी मामलों में एकसमान नहीं होते। स्थल के वासी जल या आकाश के वासियों से भिन्न होते हैं। इसी प्रकार विभिन्न ग्रहों तथा आकाश के नक्षत्रों के वासी भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। ईश्वरीय नियम के अनुसार, कोई भी स्थान रिक्त नहीं है, किन्तु एक स्थान के वासी दूसरे से भिन्न होते हैं। यहाँ तक कि मानव समाज में भी जंगलों अथवा मरुस्थलों के वासी, ग्रामों तथा नगरों के वासियों से भिन्न होते हैं। ऐसे वे प्रकृति के विभिन्न गुणों के अनुसार निर्मित होते हैं। प्रकृति के नियमों का यह समंजन अंधाधुंध नहीं होता। इस व्यवस्था के पीछे विशाल आयोजन होता है। महाराज परीक्षित इन सब बातों को प्रामाणिक रीति से महामुनि श्रील शुकदेव गोस्वामी से जानने की प्रार्थना करते हैं।

प्रमाणमण्ड-कोशस्य बाह्याभ्यन्तर-भेदतः ।

महतां चानुचरितं वर्णाश्रम-विनिश्चयः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्रमाणम्—विस्तार तथा माप; अण्ड-कोशस्य—ब्रह्माण्ड का; बाह्य—बाहरी अवकाश; अभ्यन्तर—आन्तरिक अवकाश; भेदतः—के विभाग में; महताम्—महापुरुषों का; च—भी; अनुचरितम्—चरित्र तथा कार्य; वर्ण—जातियाँ; आश्रम—जीवन के चार आश्रम; विनिश्चयः—विशेष रूप से वर्णन करें।

साथ ही कृपा करके ब्रह्माण्ड के बाहरी तथा भीतरी विशिष्ट विभागों, महापुरुषों के चरित्र तथा कार्यों और विभिन्न वर्णों एवं जीवन के चारों आश्रमों के वर्णीकरण का भी वर्णन करें।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित भगवान् श्रीकृष्ण के विलक्षण भक्त हैं, अतः वे भगवान् की सृष्टि की सम्पूर्ण महत्ता को जानने के इच्छुक हैं। वे ब्रह्माण्ड के आन्तरिक तथा बाहरी अवकाश के विषय में

जानना चाहते हैं। ज्ञान के वास्तविक खोजी के लिए इस विषय में पूरी तरह जानना सर्वथा उपयुक्त है। जिनका यह मत है कि भगवद्भक्त मात्र भावनाओं से सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे महाराज परीक्षित की जिज्ञासाओं से यह देख सकते हैं कि विशुद्ध भक्त वस्तुओं को पूरी तरह जानने के लिए कितने उत्सुक रहते हैं। आधुनिक विज्ञानी जब ब्रह्माण्ड-अन्तरिक्ष के आन्तरिक अवकाश के विषय में जान पाने में अक्षम हैं, तो फिर ब्रह्माण्ड को आच्छादित करने वाले अन्तरिक्ष (अवकाश) के विषय में क्या कहा जा सकता है ?

महाराज परीक्षित मात्र भौतिक ज्ञान से तुष्ट होने वाले नहीं हैं। वे भगवद्-भक्तों या महापुरुषों के चरित्र तथा कार्यों के विषय में जानने की उत्सुकता प्रकट करते हैं। भगवान् की महिमा तथा उनके भक्तों की महिमा से मिलकर *श्रीमद्भागवत* का पूर्ण ज्ञान बना है। श्रीकृष्ण ने अपनी माँ को अपने मुख के भीतर सारा ब्रह्माण्ड दिखलाया, किन्तु उनकी माँ अपने पुत्र-प्रेम से पूर्ण रूप से मुग्ध होने के कारण यह देखना चाह रही थीं कि उन्होंने मुँह के भीतर कितनी मिट्टी खाई है। किन्तु भगवत्कृपा से भक्त लोग भगवान् के मुख के भीतर ही ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ देखने में सक्षम होते हैं।

मानव समाज का चार वर्णों तथा चार आश्रमों में जैसा वैज्ञानिक विभाजन हुआ, उसके सम्बन्ध में भी यहाँ पर वैयक्तिक गुणत्व के आधार पर जिज्ञासा व्यक्त की गई है। ये चार विभाग मनुष्य के निजी शरीर के चार भागों के ही समान हैं। शरीर के अंग शरीर से अभिन्न होकर भी स्वयं में अंग मात्र होते हैं। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों की वैज्ञानिक प्रणाली की यही विशिष्टता है। मानव समाज के ऐसे वैज्ञानिक विभाजन की महत्ता भगवान् की भक्ति के आनुपातिक विकास द्वारा आँकी जा सकती है। सरकारी नौकरी में रत कोई भी व्यक्ति, जिसमें राष्ट्रपति भी सम्मिलित है, सम्पूर्ण सरकार का अंग होता है। प्रत्येक व्यक्ति सरकारी कर्मचारी है, किन्तु इनमें से कोई भी सरकार नहीं है। परमेश्वर के राज्य में जीवात्माओं की ठीक यही स्थिति है। कोई भी व्यक्ति कृत्रिम रूप से भगवान् के परमपद का अधिकारी नहीं बन सकता, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति परमेश्वर की सेवा के निमित्त है।

युगानि युग-मानं च धर्मो यश्च युगे युगे ।
अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

युगानि—विभिन्न युग; युग-मानम्—प्रत्येक युग की अवधि; च—भी; धर्मः—विशिष्ट कार्य; यः च—तथा जो; युगे युगे—प्रत्येक युग में; अवतार—अवतार; अनुचरितम्—तथा अवतार के कार्य; यत्—जो; आश्चर्यतमम्—सर्वाधिक अद्भुत कार्य; हरेः—परमेश्वर का।

कृपा करके सृष्टि के विभिन्न युगों तथा उन सबकी अवधियों का वर्णन कीजिये। मुझे विभिन्न युगों में भगवान् के विभिन्न अवतारों के कार्य-कलापों के विषय में भी बताइये।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं और परमेश्वर के समस्त अवतार उनसे अभिन्न होते हुए भी उन्हीं से उद्भूत हैं। महाराज परीक्षित ने परम विद्वान एवं महामुनि शुकदेव गोस्वामी से ऐसे अवतारों के कार्यकलापों के विषय में पूछा जिससे भगवान् के अवतार की पुष्टि प्रामाणिक शास्त्रों में उल्लिखित उनके कार्यकलापों के आधार पर की जा सके। महाराज परीक्षित सामान्य मनुष्य की विचारधारा में बहकर भगवान् के अवतार को आसानी से स्वीकार करने वाले जीव न थे, अपितु वे वैदिक साहित्य में वर्णित और श्रील शुकदेव गोस्वामी जैसे आचार्य द्वारा पुष्ट लक्षणों के आधार पर ही उसे स्वीकार करना चाहते थे। भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से प्राकृतिक नियमों की किसी अनिवार्यता के बिना अवतरित होते हैं; फलतः उनके कार्यकलाप भी असामान्य होते हैं। भगवान् के विशिष्ट कार्यकलाप उल्लिखित हैं और हमें यह जान लेना होगा कि भगवान् के कार्यकलाप तथा स्वयं भगवान् एक हैं क्योंकि वे परम स्तर पर स्थित हैं। अतः भगवान् के कार्यकलापों के विषय में सुनने का अर्थ है भगवान् की प्रत्यक्ष संगति करना और भगवान् की प्रत्यक्ष संगति का अर्थ है भौतिक कल्मष से शुद्धि। इसकी विवेचना हम पिछले खण्ड में कर चुके हैं।

नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ।

श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

नृणाम्—मानव समाज का; साधारणः—सामान्य; धर्मः—धार्मिक सम्पर्क-सूत्र; स-विशेषः—विशिष्ट; च—भी; यादृशः—वे जिस प्रकार से हैं; श्रेणीनाम्—तीन वर्णों के; राजर्षीणाम्—राजर्षि का; च—भी; धर्मः—धर्म; कृच्छ्रेषु—दुखी अवस्था (विपत्ति) में; जीवताम्—जीवों का।

कृपा करके यह भी बताइये कि मानव समाज के सामान्य धार्मिक सम्पर्क सूत्र क्या हों, धर्म में उनके विशिष्ट कर्तव्य क्या हों, सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासकीय राजकीय व्यवस्था का वर्गीकरण तथा विपत्तिग्रस्त मनुष्य का धर्म क्या हो?

तात्पर्य : मनुष्यों की सभी श्रेणियों का, चाहे वे कोई या कुछ भी हों, सामान्य धर्म भक्तिमय सेवा है। यहाँ तक कि भगवद्भक्ति में पशुओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है और इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण भगवान् श्रीराम के भक्त बजरंगबली या हनुमान जी द्वारा प्रस्तुत हुआ है। हम पहले ही कह चुके हैं कि यदि भगवान् के असली भक्त का पथ प्रदर्शन प्राप्त हो, तो आदिवासी तथा मानवभक्षी लोग भी भगवान् की भक्ति में लग सकते हैं। *स्कन्द पुराण* में एक कथा है कि एक बहेलिया श्री नारदमुनि के प्रभाव से किस प्रकार भगवान् का भक्त बन गया। अतः भगवद्भक्ति प्रत्येक जीव द्वारा समान रूप से भोग्य है।

विभिन्न देशों में विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों में जो धार्मिक लगाव होता है, वह स्पष्टतः मानव का सामान्य धर्म नहीं है, अपितु मूल सिद्धान्त भक्तिमय सेवा है। यदि कोई धर्म परमेश्वर की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं भी करता तो भी किसी विशेष नेता द्वारा निर्दिष्ट आनुशासनिक नियमों का पालन करना होता है। धार्मिक सम्प्रदाय का ऐसा नेता कभी भी सर्वश्रेष्ठ नहीं होता, क्योंकि ऐसा नेता अपने पद पर किसी तपस्या के माध्यम से आता है। किन्तु नेता बनने के लिए भगवान् को ऐसे आनुशासनिक कार्य नहीं करने पड़ते जैसाकि हम भगवान् श्रीकृष्ण के क्रिया-कलापों में देखते हैं।

समाज की जातियों तथा आश्रमों के कर्तव्य जीविका के नियमों पर आधारित होते हुए भक्ति सिद्धान्तों पर भी निर्भर करते हैं। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि मनुष्य अपने कर्मों के फल को भगवान् की भक्ति में अर्पित करने मात्र से जीवन की परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। भगवान् की भक्ति करने वाला कभी कष्ट नहीं भोगता, अतः *आपद-धर्म* का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैसाकि परम अधिकारी श्रील शुकदेव गोस्वामी द्वारा इस ग्रन्थ में बताया जाएगा, भगवद्भक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म नहीं है, भले ही वह विभिन्न रूपों में प्रकट क्यों न हो।

तत्त्वानां परिसङ्ख्यानं लक्षणं हेतु-लक्षणम् ।

पुरुषाराधन-विधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्त्वानाम्—सृष्टि को निर्मित करने वाले तत्त्वों की; परिसङ्ख्यानम्—संख्या का; लक्षणम्—लक्षण; हेतु-लक्षणम्—कारणों के लक्षण; पुरुष—भगवान् के; आराधन—भक्ति का; विधि:—विधि-विधान; योगस्य—योग पद्धति का; अध्यात्मिकस्य—भक्ति तक पहुँचाने वाली आध्यात्मिक विधियाँ; च—भी।

कृपा करके सृष्टि के तत्त्वमूलक सिद्धान्तों, इन सिद्धान्तों की संख्या, इनके कारणों तथा इनके विकास और इनके साथ-साथ भक्ति की विधि तथा योगशक्तियों की विधि के विषय में भी बताइये।

योगेश्वरैश्वर्य-गतिर्लिङ्ग-भङ्गस्तु योगिनाम् ।

वेदोपवेद-धर्माणामितिहास-पुराणयोः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

योग-ईश्वर—योग शक्तियों के स्वामी का; ऐश्वर्य—ऐश्वर्य; गतिः—प्रगति; लिङ्ग—सूक्ष्म शरीर; भङ्गः—विरक्ति; तु—लेकिन; योगिनाम्—योगियों का; वेद—दिव्य ज्ञान; उपवेद—वेदों का अप्रत्यक्ष ज्ञान; धर्माणाम्—धर्मशास्त्रों का; इतिहास—इतिहास; पुराणयोः—पुराणों का।

महान् योगियों के ऐश्वर्य क्या हैं और उनकी परम गति क्या है? पूर्ण योगी किस प्रकार सूक्ष्म शरीर से विरक्त होता है? इतिहास की शाखाओं तथा पूरक पुराणों समेत वैदिक साहित्य का मूलभूत ज्ञान क्या है?

तात्पर्य : योगेश्वर आठ प्रकार की सिद्धियाँ प्रदर्शित कर सकता है, जिनमें परमाणु से भी सूक्ष्म बनना या पंख से भी हल्का होना, इच्छानुसार वस्तु को प्राप्त करना और जहाँ भी इच्छा हो चले जाना, आकाश में किसी लोक का निर्माण करना इत्यादि कृत्य सम्मिलित हैं। ऐसे अनेक योगेश्वर हैं, जो ऐसी भिन्न-भिन्न सिद्धियों में दक्ष होते हैं, किन्तु इनमें से सर्वश्रेष्ठ हैं शिवजी। शिवजी सर्वश्रेष्ठ योगी हैं और सामान्य जीवों से कहीं बढ़कर अद्भुत कार्य करने वाले हैं। भगवद्भक्त योग शक्तियों का प्रत्यक्ष रूप से अभ्यास नहीं करते, किन्तु भगवत्कृपा से वे दुर्वासा मुनि जैसे महान् योगेश्वर को परास्त कर सकते हैं, जो महाराज अम्बरीष से झगड़ा मोल लेकर उन्हें अपनी योगशक्ति की अद्भुत उपलब्धियाँ दिखाना चाहते थे। महाराज अम्बरीष भगवान् के शुद्ध भक्त थे, अतः भगवान् ने अम्बरीष महाराज द्वारा किसी प्रयास के बिना ही उन्हें योगेश्वर दुर्वासा मुनि के रोष से बचा लिया और मुनि को राजा से क्षमा माँगनी पड़ी। इसी प्रकार जब द्रौपदी को कुरु लोग मिलकर भरी सभा में नग्न करके देखना चाह रहे थे, तो भगवान् ने इस संकट की घड़ी में अशेष साड़ी प्रदान करके रक्षा की थी और द्रौपदी को तो किसी योगशक्ति का ज्ञान भी नहीं था। अतः भगवान् की असीम शक्ति के बल पर भक्त भी योगेश्वर होते हैं, ठीक उसी तरह जिस प्रकार बालक अपने माता-पिता की शक्ति से शक्तिशाली बनता है। वे किसी

कृत्रिम उपाय से अपनी रक्षा नहीं करते, किन्तु माता-पिता के अनुग्रह से बच जाते हैं।

महाराज परीक्षित ने ब्राह्मणश्रेष्ठ शुकदेव गोस्वामी से ऐसे महान् योगियों के परम गन्तव्य के विषय में अथवा वे जिस प्रकार अपने प्रयासों से या भगवत्कृपा से ऐसी अद्वितीय शक्तियाँ प्राप्त करते हैं, उसके विषय में भी प्रश्न किये। उन्होंने सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक शरीर से उनकी विरक्ति के विषय में भी प्रश्न किये। उन्होंने वैदिक ज्ञान के सार के विषय में भी जिज्ञासा प्रकट की। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है, समस्त वेदों का सार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जानना और इस प्रकार भगवान् का दिव्यरूप प्रिय दास बनना है।

सम्लवः सर्व-भूतानां विक्रमः प्रतिसङ्क्रमः ।

इष्टा-पूर्तस्य काम्यानां त्रि-वर्गस्य च यो विधिः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सम्लवः—पूर्ण विनाश, सम्यक साधन; सर्व-भूतानाम्—समस्त जीवों का; विक्रमः—विशिष्ट शक्ति या स्थिति; प्रतिसङ्क्रमः—चरम विनाश; इष्टा—वैदिक अनुष्ठानों का सम्पन्न किया जाना; पूर्तस्य—धर्म के पवित्र कार्य; काम्यानाम्—आर्थिक विकास के हेतु अनुष्ठान; त्रि-वर्गस्य—धर्म, अर्थ तथा काम ये तीन साधन; च—भी; यः—जो भी; विधिः—विधियाँ।

कृपा करके मुझे बताइये कि जीवों की उत्पत्ति, पालन और उनका संहार किस प्रकार होता है? भगवान् की भक्तिमय सेवा करने से जो लाभ तथा हानियाँ होती हैं, उन्हें भी समझाइये। वैदिक अनुष्ठान तथा उपवैदिक धार्मिक कृत्यों के आदेश क्या हैं? धर्म, अर्थ तथा काम के साधनों की विधियाँ क्या हैं?

तात्पर्य : *सम्लवः* “सम्यक साधन” के अर्थ में भक्ति करने के लिए प्रयुक्त होता है जब कि *प्रतिसम्लवः* इसके बिल्कुल विपरीत है और भक्ति की प्रगति को विनष्ट करने वाले का द्योतक है। जो व्यक्ति भगवान् की भक्तिमय सेवा में दृढ़तापूर्वक स्थित है, वह सरलतापूर्वक बद्ध जीवन बिता सकता है। बद्ध जीवन-बिताना समुद्र के बीच में नाव के खेने जैसा है। इसमें मनुष्य को समुद्र की कृपा पर आश्रित रहना पड़ता है, क्योंकि किसी भी क्षण, थोड़े से विक्षोभ से, नाव डूब सकती है। हाँ, यदि मौसम अच्छा रहा तो निस्संदेह नाव सरलता से चलती रहती है, किन्तु यदि थोड़ा भी तूफान, कुहरा, झंझा या बादल रहा, तो नाव किसी भी क्षण डूब सकती है। कोई कितना ही साधनसम्पन्न क्यों न हो, वह समुद्र की तरंग को नियन्त्रित नहीं कर सकता। जिन्होंने जलयानों के द्वारा समुद्र पार किया है उन्हें

समुद्र की कृपा पर निर्भर रहने का पर्याप्त अनुभव होगा। किन्तु भगवत्कृपा से भवसागर को बिना झंझा या कुहरे के भय के सरलता से पार किया जा सकता है। यह सब भगवान् की इच्छा पर निर्भर करता है; यदि बद्ध जीवन में कोई दुर्भाग्यपूर्ण खतरा उत्पन्न हो जाए तो कोई कुछ नहीं कर सकता। किन्तु भगवान् के भक्त भव-सागर को चिन्तारहित होकर पार कर लेते हैं, क्योंकि भगवान् उनकी सदैव रक्षा करता है (*भगवद्गीता* ९.१३)। भगवान् अपने भक्तों के भौतिक बद्ध जीवन के कार्यकलापों की ओर विशेष ध्यान देते हैं (*भगवद्गीता* ९.२९)। अतः प्रत्येक व्यक्ति को भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए और सब तरह से शुद्ध भक्त बनना चाहिए।

अतः मनुष्यों को सक्षम गुरु से उसी प्रकार यह जानना चाहिए कि भक्ति करने से क्या-क्या लाभ तथा हानियाँ हैं, जिस प्रकार श्रील शुकदेव गोस्वामी से महाराज परीक्षित ने पूछा था। *भक्ति रसामृत सिन्धु* के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि शरीर तथा आत्मा के पोषण के लिए जितने भोजन की आवश्यकता हो, उतना ही खाए। मानव शरीर के निर्वाह के लिए दूध तथा शाकाहार पर्याप्त है, अतः स्वाद की पूर्ति हेतु इससे अधिक कुछ खाने की कोई आवश्यकता नहीं है। भौतिक जगत में अपने को बड़ा दिखाने के लिए धन का संग्रह नहीं करना चाहिए। ईमानदारी के साथ अपनी जीविका सुगमता से चलानी चाहिए, क्योंकि जोड़-तोड़ से समाज में बड़ा आदमी बनने की अपेक्षा ईमानदारी से कुली बन कर रहना श्रेयस्कर है। यदि कोई ईमानदारी से विश्व का सबसे बड़ा धनी पुरुष बनता है, तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु केवल धन संग्रह के लिए जीविका कमाते समय ईमान बेचना उचित नहीं। इस प्रकार का प्रयत्न भक्ति में बाधक है। मनुष्य को ऊल-जुलूल नहीं बोलना चाहिए (प्रलाप नहीं करना चाहिए)। भक्त का कार्य तो भगवान् की कृपा प्राप्त करना है। अतः भक्त को सदैव ईश्वर की अद्भुत सृष्टि के लिए उनकी महिमा का वर्णन करना चाहिए। भक्त को ईश्वर की सृष्टि को यह कह कर नहीं नकारना चाहिए कि यह संसार झूठा (असत्य) है। यह संसार असत्य नहीं है। वस्तुतः हमें अपने पालन के लिए इस संसार से अनेक वस्तुएँ ग्रहण करनी होती हैं, अतः हम यह कैसे कह सकते हैं कि यह संसार असत्य है? इसी प्रकार हम यह कैसे कह सकते हैं कि ईश्वर का कोई रूप नहीं है? भला कोई निर्विशेष होकर समस्त बुद्धि तथा चेतना से किस प्रकार युक्त हो सकता है? अतः शुद्ध भक्त के जानने

के लिए अनेक बातें हैं और उन्हें शुकदेव गोस्वामी जैसे प्रामाणिक महापुरुष से सीखना चाहिए।

भक्तिमय सेवा करने के लिए उपयुक्त परिस्थिति यही है कि ईश्वर की सेवा अत्यन्त उत्साह के साथ की जाय। भगवान् ने अपने श्री चैतन्य महाप्रभु रूप में यह चाहा है कि सारे संसार के कोने-कोने में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार किया जाय; अतः शुद्ध भक्त का परम कर्तव्य है कि जहाँ तक सम्भव हो, वह इस आदेश को पूरा करे। प्रत्येक भक्त को न केवल दैनिक भक्ति-अनुष्ठानों के प्रति उत्साह होना चाहिए, अपितु भगवान् चैतन्य के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए सम्प्रदाय का शान्तिपूर्वक प्रचार करना चाहिए। यदि उसे ऊपरी तौर पर इसमें सफलता नहीं मिलती तो उसे अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। शुद्ध भक्त के लिए सफलता-असफलता का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि वह युद्ध-भूमि में सैनिक के समान होता है। भक्तिमय सेवा की विचारधारा का प्रचार ठीक कुछ-कुछ वैसा ही है जैसे कि भौतिक जीवन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना। भौतिकतावादी कई प्रकार के हैं—यथा सकामकर्मी, ज्ञानी, चमत्कारी योगी इत्यादि जैसे और भी। वे सभी ईश्वर के अस्तित्व के विरोधी हैं। वे अपने को ही ईश्वर घोषित करते हैं, भले ही वे पग-पग पर प्रत्येक कार्य के लिए ईश्वर की कृपा पर आश्रित क्यों न रहें। अतः शुद्ध भक्त को चाहिए कि इन नास्तिकों के गिरोहों का साथ न दे। भगवान् का सबल भक्त अभक्तों के ऐसे नास्तिकतावादी प्रचार से कभी गुमराह नहीं होता, किन्तु नवदीक्षित भक्त को इनसे बहुत सतर्क रहना चाहिए। भक्त को, प्रामाणिक गुरु के पथप्रदर्शन में ठीक से भक्ति करनी चाहिए, मात्र औपचारिकताओं से नहीं चिपके रहना चाहिए। प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में यह देखना चाहिए कि कितनी भक्तिमय सेवा की जा रही है, मात्र अनुष्ठान के सम्बन्ध में नहीं। भक्त को किसी वस्तु के पीछे नहीं दौड़ना चाहिए वरन् भगवान् की इच्छा से जो प्राप्त हो उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिए। भक्तिमय जीवन का यही सिद्धान्त होना चाहिए। ऐसे सभी सिद्धान्त शुकदेव गोस्वामी जैसे गुरु के निर्देशन में सरलता से सीखे जा सकते हैं। महाराज परीक्षित ने शुकदेव जी से ठीक ही पूछा और मनुष्य को उनके इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए।

महाराज परीक्षित ने संसार की उत्पत्ति, पालन तथा संहार, वैदिक अनुष्ठानों की विधि तथा पुराणों एवं महाभारत जैसे उपवेदों में वर्णित पवित्र कार्यों के करने की विधि के विषय में पूछा। जैसे कि पहले

व्याख्या की जा चुकी है, महाभारत प्राचीन भारत का इतिहास है और पुराण भी वैसे ही हैं। पुण्यकार्यों का उल्लेख उपवेदों (स्मृतियों) में हुआ है और इनमें सामान्य जनता को जल उपलब्ध कराने के लिए तालाब तथा कुएँ खोदने जैसे कार्य सम्मिलित हैं। सड़कों के किनारे वृक्ष लगाना, मन्दिर तथा ईश्वर की पूजा के स्थल बनवाना, निर्धनों को अन्न देने के लिए दान-केन्द्र खोलना तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य पूर्त कहलाते हैं।

इसी प्रकार राजा ने सभी के लाभ और इन्द्रियतुष्टि के लिए प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति की विधि के विषय में जानने की भी जिज्ञासा प्रकट की।

यो वानुशायिनां सर्गः पाषण्डस्य च सम्भवः ।

आत्मनो बन्ध-मोक्षौ च व्यवस्थानं स्व-रूपतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो सब; वा—अथवा; अनुशायिनाम्—भगवान् के शरीर में समाहित; सर्गः—सृष्टि; पाषण्डस्य—पाखंडियों का; च—तथा; सम्भवः—प्राकट्य; आत्मनः—जीवों का; बन्ध—बद्ध; मोक्षौ—मुक्त हुए; च—भी; व्यवस्थानम्—स्थित हुए; स्व-रूपतः—मुक्त अवस्था में।

कृपया यह भी समझाएँ कि भगवान् के शरीर में समाहित जीव किस प्रकार उत्पन्न होते हैं और पाखंडीजन किस तरह इस संसार में प्रकट होते हैं? यह भी बताएँ कि किस प्रकार अबद्ध जीवात्माएँ विद्यमान रहती हैं?

तात्पर्य : भगवान् के प्रगतिशील भक्त को प्रामाणिक गुरु से पूछना चाहिए कि सृष्टि के समय भगवान् के शरीर में समाहित जीवात्माएँ किस प्रकार वापस आती हैं। जीवात्माएँ दो प्रकार की होती हैं—नित्यमुक्त जीव तथा नित्यबद्ध जीव। नित्यबद्ध जीव के भी दो प्रकार हैं—आज्ञाकारी तथा अवज्ञाकारी। आज्ञाकारी जीव के पुनः दो भेद हैं—भक्त तथा चिन्तक। चिन्तक भगवान् के शरीर से तादात्म्य चाहते हैं जबकि भक्त अपनी पृथक् सत्ता बनाये रखकर भगवान् की सेवा में निरन्तर लगे रहना चाहते हैं। ऐसे भक्त जो पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं होते तथा ज्ञानमार्गी दार्शनिक अगली सृष्टि में और अधिक शुद्धिकरण के लिए पुनः बद्ध हो जाते हैं। ऐसे बद्धजीव भगवान् की भक्ति में प्रगति के साथ मुक्त हो जाते हैं। महाराज परीक्षित ने ये सारे प्रश्न अपने गुरु से पूछे जिससे वह तत्त्व-ज्ञान में निष्णात हो सकें।

यथात्म-तन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्म-मायया ।
विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद् विभुः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; आत्म-तन्त्रः—स्वतन्त्र; भगवान्—श्रीभगवान्; विक्रीडति—लीला करते हैं; आत्म-मायया—अपनी अन्तरंगा शक्ति से; विसृज्य—त्याग कर; वा—भी; यथा—वे जिस प्रकार चाहते हैं; मायाम्—बहिरंगा शक्ति; उदास्ते—रहता है; साक्षिवत्—साक्षी की तरह; विभुः—सर्वशक्तिमान्।

स्वतन्त्र भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से अपनी लीलाओं का आस्वादन करते हैं और प्रलय के समय वे इन्हें बहिरंगा शक्ति को प्रदान कर देते हैं और स्वयं साक्षी रूप में बने रहते हैं।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने तथा समस्त अन्य अवतारों के स्रोत होने के कारण वे ही एकमात्र स्वतन्त्र पुरुष हैं। वे अपनी इच्छानुसार सृष्टि द्वारा लीलाओं का आस्वादन करते हैं और प्रलय के समय इन्हें बहिरंगा शक्ति को प्रदान कर देते हैं। केवल अन्तरंगा शक्ति से ही वे पूतना का वध करते हैं, यद्यपि वे माता यशोदा की गोद में लीलाएँ करते हैं। जब वे इस संसार से प्रयाण करना चाहते हैं, तो वे अपने ही वंश (यदु-कुल) के संहार की लीला रचाते हैं और ऐसे विनाश से अप्रभावित बने रहते हैं। जो कुछ घटित हो रहा है, वे उसके साक्षी हैं, तो भी उससे उन्हें कुछ लेना-देना नहीं। वे सब प्रकार से स्वतन्त्र हैं। शुद्ध भक्त को यह सब अच्छी तरह जानना चाहिए इसीलिए महाराज परीक्षित ने पूरी तरह जान लेने की जिज्ञासा प्रकट की।

सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छतो मेऽनुपूर्वशः ।
तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महा-मुने ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सर्वम्—ये सब; एतत्—प्रश्न; च—न पूछ सकने के कारण भी; भगवन्—हे ऋषि; पृच्छतः—जिज्ञासु का; मे—मैं स्वयं; अनुपूर्वशः—प्रारम्भ से; तत्त्वतः—सत्य के अनुसार; अर्हसि—कृपा करके बताएँ; उदाहर्तुम्—जैसे आप बताएँगे; प्रपन्नाय—घिरा हुआ; महा-मुने—हे ऋषि!।

हे भगवान् के प्रतिनिधिस्वरूप महर्षि, आप मेरी उन समस्त जिज्ञासाओं को जिनके विषय में मैंने आपसे प्रश्न किये हैं तथा उनके विषय में भी जिन्हें मैं जिज्ञासा करने के प्रारंभ से प्रस्तुत नहीं कर सका, उनके बारे में कृपाकरके जिज्ञासा शान्त कीजिये। चूँकि मैं आपकी शरण में आया हूँ, अतः मुझे इस सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्रदान करें।

तात्पर्य : गुरु अपने शिष्य को ज्ञान प्रदान करने के लिए सदैव उद्यत रहता है, विशेष रूप से तब जबकि शिष्य अत्यन्त उत्सुक हो। प्रगतिशील शिष्य के लिए उत्सुकता बनाए रखना अत्यावश्यक है। महाराज परीक्षित विलक्षण शिष्य थे, क्योंकि वे नितान्त उत्सुक थे। यदि कोई आत्म-साक्षात्कार के लिए अत्यधिक उत्सुक नहीं होता, तो केवल शिष्यता दिखाने के लिए गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। महाराज परीक्षित न केवल जो कुछ उन्होंने पूछा है उसके विषय में जानने के उत्सुक हैं, वरन् जो कुछ वे नहीं पूछ पाये, उसके विषय में भी जानने के लिए उत्सुक हैं। वस्तुतः मनुष्य के लिए गुरु से हर एक बात पूछना संभव नहीं है, किन्तु प्रामाणिक गुरु सब प्रकार से शिष्य के लाभ हेतु उसे प्रकाश दे सकता है।

अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथात्म-भूः ।

अपरे चानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्व-जैः कृतम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस विषय में; प्रमाणम्—प्रमाण; हि—निश्चय ही; भवान्—आप; परमेष्ठी—ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड का स्रष्टा; यथा—जिस प्रकार; आत्म-भूः—सीधे भगवान् से उत्पन्न; अपरे—अन्य लोग; च—केवल; अनुतिष्ठन्ति—केवल अनुकरण करने के लिए; पूर्वेषाम्—प्रथानुसार; पूर्व-जैः—पूर्ववर्ती दार्शनिक द्वारा सुझाया ज्ञान; कृतम्—किया हुआ।

हे महर्षि, आप आदि प्राणी ब्रह्मा के तुल्य हैं। अन्य लोग केवल प्रथा का पालन करते हैं जिस प्रकार पूर्ववर्ती दार्शनिक चिन्तक किया करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ यह दलील रखी जा सकती है कि शुकदेव गोस्वामी ही अध्यात्म सम्बन्धी पूर्णज्ञान के एकमात्र अधिकारी नहीं—अनेक अन्य मुनि तथा उनके अनुयायी भी अधिकारी हैं। व्यासदेव के समकालीन अथवा उनसे भी पूर्व अनेक महर्षि हुए हैं यथा गौतम, कणाद, जैमिनि, कपिल तथा अष्टावक्र और इन सभी ने अपने-अपने दार्शनिक मार्ग प्रस्तुत किये हैं। पतञ्जलि भी इनमें से एक हैं। इस प्रकार इन छहों ऋषियों की, आधुनिक दार्शनिकों तथा चिन्तकों के ही समान, अपनी-अपनी विचारधाराएँ हैं। श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा उपर्युक्त छहों ऋषियों के दार्शनिक मार्गों में यही अन्तर है कि जहाँ छहों ऋषि अपने चिन्तन के अनुसार तथ्यों का वर्णन करते हैं, वहीं *श्रीमद्भागवत* में शुकदेव गोस्वामी प्रत्यक्ष ब्रह्मा से प्राप्त ज्ञान को प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें *आत्मभूः* कहा जाता है अर्थात् वे जो सर्वशक्तिमान भगवान् से जन्मे हों और उन्हीं से शिक्षित किए हुए हों।

वैदिक दिव्य ज्ञान का अवतरण सीधे भगवान् से होता है। भगवत्कृपा से ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ; ब्रह्मा से नारद को और नारद से व्यास को ज्ञान मिला। शुकदेव गोस्वामी ने इस दिव्य ज्ञान को सीधे अपने पिता व्यासदेव से प्राप्त किया। इस प्रकार शिष्य-परम्परा से प्राप्त ज्ञान परिपूर्ण है। जब तक कोई शिष्य-परम्परा से ज्ञान प्राप्त नहीं करता तब तक वह पूर्ण रूप से गुरु नहीं बन सकता। दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का यही रहस्य है। भले ही उपर्युक्त छहों ऋषि महान् चिन्तक हों, किन्तु चिन्तन द्वारा प्राप्त उनका ज्ञान पूर्ण नहीं है। दार्शनिक मत प्रस्तुत करने में कोई ज्ञानमार्गी चाहे कितना ही पूर्ण क्यों न हो ऐसा ज्ञान कभी भी पूर्ण नहीं होता, क्योंकि वह अपूर्ण मस्तिष्क (मन) की उपज होता है। ऐसे ऋषियों की भी शिष्य-परम्पराएँ होती हैं, किन्तु ये प्रामाणिक नहीं होतीं, क्योंकि वे स्वतन्त्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण से प्राप्त नहीं हैं। नारायण के अतिरिक्त कोई भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता, अतः किसी का भी ज्ञान पूर्ण नहीं है, क्योंकि हर एक का ज्ञान चलायमान मन (मस्तिष्क) पर आश्रित है। मन पदार्थ है, अतः भौतिक चिन्तकों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान कभी भी दिव्य और पूर्ण नहीं हो सकता। संसारी दार्शनिक स्वयं अपूर्ण होने के कारण अन्य दार्शनिकों से मतभेद रखता है और संसारी दार्शनिक का कोई अपना सिद्धान्त न होने से वह दार्शनिक कभी नहीं कहा जा सकता। महाराज परीक्षित जैसे बुद्धिमान पुरुष इन चिन्तकों को नहीं मानते, चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों। वे तो केवल शुकदेव गोस्वामी जैसे अधिकारी से सुनते हैं, जो परम्परा-पद्धति के द्वारा श्रीभगवान् से अभिन्न होते हैं जैसाकि *भगवद्गीता* में विशेष बल के साथ कहा गया है।

न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्नशनादमी ।

पिबतोऽच्युत-पीयूषम् तद् वाक्याब्धि-विनिःसृतम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; मे—मेरा; असवः—प्राण; परायन्ति—निकल सकता है; ब्रह्मन्—हे विद्वान् ब्राह्मण; अनशनात् अमी—अनशन (उपवास) के कारण; पिबतः—पीने के कारण; अच्युत—न गिरने वाले; पीयूषम्—अमृत; तत्—तुम्हारे; वाक्य-अब्धि—वाणी रूपी सिन्धु से; विनिःसृतम्—निकलने वाला।

हे विद्वान् ब्राह्मण, अच्युत भगवान् की कथा के अमृत का, जो आपकी वाणी रूपी समुद्र से बह रहा है, मेरे द्वारा पान करने से मुझे उपवास रखने के कारण किसी प्रकार की कमजोरी नहीं लग रही।

तात्पर्य : ब्रह्मा, नारद, व्यास तथा शुकदेव गोस्वामी की शिष्य-परम्परा अन्यो से विशेष रूप से भिन्न है। अन्य मुनियों की शिष्य-परम्पराएँ समय की बरबादी जैसी हैं, क्योंकि वे अच्युत कथा से विहीन हैं। कारण तथा तर्क के द्वारा चिन्तक अपने-अपने सिद्धान्तों को अच्छी तरह से प्रस्तुत कर सकते हैं, किन्तु ये कारण तथा तर्क अचूक नहीं होते, क्योंकि उनसे उत्तम अन्य चिन्तकों द्वारा वे परास्त कर दिये जाते हैं। महाराज परीक्षित को चंचल मन के शुष्क चिन्तन के प्रति तनिक भी रुचि नहीं थी, वे तो भगवद्कथा में रुचि रखते थे, क्योंकि उन्हें लगा कि शुकदेव गोस्वामी के मुख से ऐसी अमृतकथा सुनने के कारण उन्हें कमजोरी का अनुभव नहीं हो रहा था, यद्यपि वे आसन्न मृत्यु के कारण अनशन कर रहे थे।

कोई चाहे तो ऐसे चिन्तकों को सुन सकता है, किन्तु दीर्घकाल तक ऐसा नहीं चल पाता। मनुष्य ऐसे घिसे-पिटे चिन्तन को सुनकर शीघ्र ही ऊब उठेगा और संसार का कोई भी व्यक्ति ऐसे व्यर्थ के चिन्तन को सुनकर तुष्टि नहीं पाता। शुकदेव गोस्वामी जैसे महापुरुष से भगवान् की कथा सुनते हुए कोई थकेगा नहीं, भले ही अन्य कारणों से वह क्षीण क्यों न हो चुका हो।

श्रीमद्भागवत के कुछ संस्करणों में इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति का पाठ इस प्रकार है— *अन्यत्र कुपिताद् द्विजात्* जिसका अर्थ है कि राजा सर्पदंश के कारण सन्निकट मृत्यु के विचार से भाव-विह्वल हो सकता है। सर्प भी द्विजन्मा होता है और इसका क्रोध अज्ञानी ब्राह्मण बालक के शाप के तुल्य माना जाता है। महाराज परीक्षित मृत्यु से बिल्कुल भयभीत नहीं थे, क्योंकि उन्हें भगवत्कथा से पूर्ण रूप से प्रेरणा प्राप्त हो चुकी थी। जो अच्युत कथा में पूर्ण रूप से निमग्न रहता है, वह इस जगत में किसी से भयभीत नहीं हो सकता।

सूत उवाच

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्यतेः ।

ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—श्रील सूत गोस्वामी ने कहा; सः—वह (शुकदेव गोस्वामी); उपामन्त्रितः—इस प्रकार पूछे जाने पर; राज्ञा—राजा द्वारा; कथायाम्—कथाओं में; इति—इस प्रकार; सत्-पतेः—सर्वोच्च सत्य की; ब्रह्म-रातः—शुकदेव गोस्वामी; भृशम्—अत्यधिक; प्रीतः—प्रसन्न; विष्णु-रातेन—महाराज परीक्षित द्वारा; संसदि—सभा में।

सूत गोस्वामी ने कहा—महाराज परीक्षित द्वारा भक्तों से संबंधित भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ कहने के लिए आमन्त्रित किये जाने पर शुकदेव गोस्वामी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य : नियमानुसार *श्रीमद्भागवत* की चर्चा केवल भगवद्भक्तों के बीच ही की जा सकती है। जिस प्रकार *भगवद्गीता* की आधिकारिक व्याख्या श्रीकृष्ण तथा अर्जुन (क्रमशः भगवान् तथा भक्त) के बीच हुई उसी प्रकार *श्रीमद्भागवत*, जो *भगवद्गीता* का स्नातकोत्तर अध्ययन है, की व्याख्या शुकदेव गोस्वामी तथा महाराज परीक्षित जैसे विद्वानों तथा भक्तों के बीच हो सकती है। अन्यथा अमृत का वास्तविक स्वाद नहीं चखा जा सकता। शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से प्रसन्न थे, क्योंकि वे भगवान् की कथाएँ सुनने से तनिक भी नहीं ऊबे थे, अपितु वे उन्हें रुचिपूर्वक अधिकाधिक सुनना चाह रहे थे। मूर्ख व्याख्याकार वृथा ही *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में अपना हाथ लगाते हैं, जबकि इन विषयों तक उनकी पैठ नहीं है। अभक्तों को इन दोनों सर्वश्रेष्ठ वैदिक ग्रन्थों में दखल देने से कोई लाभ नहीं मिलेगा, अतः शंकराचार्य ने *श्रीमद्भागवत* का भाष्य करने में हाथ नहीं लगाया। श्रीपाद शंकराचार्य ने, अपने *भगवद्गीता* के भाष्य में, श्रीकृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु बाद में उन्होंने निर्विशेषवादी दृष्टि से टीका की है। किन्तु अपनी स्थिति से अवगत होते हुए उन्होंने *श्रीमद्भागवत* की टीका नहीं की।

श्रील शुकदेव गोस्वामी को श्रीकृष्ण का प्रश्रय प्राप्त था (देखें ब्रह्मवैवर्त पुराण) इसीलिए उन्हें ब्रह्मरात कहा गया है। श्रीमान् परीक्षित महाराज को *विष्णुरात* कहा जाता है, क्योंकि उन्हें भगवान् विष्णु का संरक्षण प्राप्त था। भगवद्भक्त के रूप में वे भगवान् द्वारा सदैव संरक्षित रहते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी स्पष्ट है कि *विष्णुरात* को और किसी से न सुनकर *ब्रह्मरात* से ही *श्रीमद्भागवत* सुननी चाहिए, क्योंकि अन्य लोग दिव्य ज्ञान को ठीक से प्रस्तुत नहीं करते और इस तरह मूल्यवान समय को नष्ट करते हैं।

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म-सम्मितम् ।

ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्म-कल्प उपागते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

प्राह—कहा; भागवतम्—तत्त्वज्ञान; नाम—नामक; पुराणम्—उपवेद; ब्रह्म-सम्मितम्—वेदों के अनुकरण में; ब्रह्मणे—ब्रह्माजी से; भगवत्-प्रोक्तम्—भगवान् द्वारा कही गई; ब्रह्म-कल्पे—उस युग में जिसमें सर्वप्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई; उपागते—प्रारम्भ में ही।

उन्होंने महाराज परीक्षित के प्रश्नों का उत्तर देना यह कहकर प्रारम्भ किया कि इस तत्त्व ज्ञान को सर्वप्रथम स्वयं भगवान् ने ब्रह्मा से उनके जन्म के समय कहा। श्रीमद्भागवत उपवेद है और वेदों का ही अनुकरण करता है।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत तत्त्व-ज्ञान (भगवान् का विज्ञान) है। इस महान् ज्ञान को न जानने के कारण निर्विशेषवादी सदैव भगवान् के सगुण रूप को ठीक से प्रस्तुत नहीं करते। श्रीमद्भागवत वेदों तथा तत्त्व-ज्ञान का ही अनुकरण है। इस ज्ञान को सीखने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह श्रील शुकदेव के प्रतिनिधि की शरण में जाय और महाराज परीक्षित के पदचिह्नों का अनुसरण करे। वह अज्ञानतावश इसकी व्याख्या का प्रयास करके भगवान् के चरणों के प्रति अपराध न करे। अभक्तों द्वारा हानिकारक ढंग से श्रीमद्भागवत की व्याख्या किये जाने से इसको समझने में काफी अराजकता उत्पन्न हुई है। जिज्ञासु को चाहिए कि यदि वह तत्त्व-ज्ञान जानने का इच्छुक हो तो वह इस ढंग से सतर्क रहे।

यद् यत् परीक्षितः पाण्डूनामनुपृच्छति ।

आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; परीक्षित—राजा; ऋषभः—श्रेष्ठ; पाण्डूनाम्—पाण्डुवंश में; अनुपृच्छति—पूछते जाते; आनुपूर्व्येण—आदि से अन्त तक; तत्—वह सब; सर्वम्—पूर्णतः; आख्यातुम्—वर्णन करने के लिए; उपचक्रमे—अपने आपको तैयार किया।

उन्होंने अपने आपको राजा परीक्षित द्वारा जो कुछ पूछा गया था उसका उत्तर देने के लिए तैयार किया। महाराज परीक्षित पाण्डुवंश में सर्वश्रेष्ठ थे, अतः वे उचित व्यक्ति से उचित प्रश्न पूछने में समर्थ हुए।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित ने बातों को यथारूप में जानने के लिए अनेक प्रश्न पूछे जिनमें से कुछ अत्यन्त उत्सुकतापूर्ण थे, किन्तु गुरु के लिए आवश्यक नहीं कि वह उसी क्रम में उत्तर दे जिस क्रम में शिष्य प्रश्न पूछे। किन्तु शुकदेव गोस्वामी ने, अनुभवी शिक्षक होने के नाते, सभी प्रश्नों का उत्तर क्रमबद्ध रीति से दिया, जिस रूप में उन्हें ये शिष्य-परम्परा से प्राप्त हुए थे। उन्होंने सभी प्रश्नों के उत्तर दिए, किसी को छोड़ा नहीं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के अन्तर्गत “राजा परीक्षित द्वारा पूछे गये प्रश्न” नामक अष्टम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।